पुस्तक परिचय

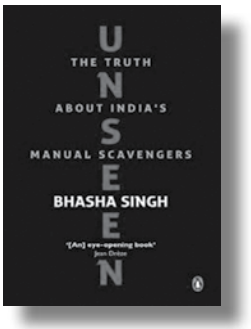

कोई इतना अंधा नहीं है

पुस्तक : अनसीनः द ट्रुथ अबाउट इंडियाज़ मैनुअल स्केवैन्जर्स
लेखन : भाषा सिंह, रेणु तलवार
पृष्ठ : 224
प्रकाशक : पैनगुइन, नई दिल्ली
भाषा : अंग्रेज़ी

यह एक ऐसा शब्द है जिसे छापने के लिए संकेतों या खाली जगहों का प्रयोग किया जाता है। इसे अच्छा नहीं समझा जाएगा यदि मैंने अपने लेख में 'पाखाना' शब्द का प्रयोग किया। हम कहेंगे कि गंभीर पत्रकारी लेखन का क्या स्तर हो गया है। परन्तु कोई बात नहीं, सारे देश में हज़ारों लोग जिनमें 98% स्त्रियां है इसी अप्रकाशनीय ढेर को बग़ैर दस्तानों के अपने हाथों से उठाकर टोकरियों में भरती हैं और उन टोकरियों को अपने सिर पर ढोकर हम जैसे सभ्य, पढ़े-लिखे, रोज़ नहाने वाले लोगों की उपस्थिति से दूर ले जाकर पटकती हैं।

शहरों में रहने वाले हममें से अनेक लोगों के लिए शायद यह अचम्भे की बात हो कि आज भी भारत में रोज़मर्रा कितने बड़े पैमाने पर हाथों से मैला उठाया जाता है। यह 'काम' जाति प्रथा से जकड़े सिर्फ़ एक समुदाय के लिए सुरक्षित है और जिसे एक निठल्ला, आंख मूंद कर बैठा लोकतांत्रिक समाज और मज़बूत करता है।

क्या हाथ से मैला उठाने की प्रथा की मौजूदगी और वह भी सिर्फ़ एक ख़ास समुदाय के लोगों द्वारा, मानवता के प्रति अपराध नहीं है? इसे मुद्दे पर प्रायः बहस सुनाई नहीं देती। बहस के लिए अन्य कई विषय हैं— रुपये की गिरती कीमत, भारत की परमाणु क्षमता, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आदि। आख़िर हम एक महाशक्ति बनने की 'प्रतिक्षा' में हैं। 'प्रतिक्षा' ही वह शब्द है जो भारत में हाथ से मैला उठाने वालो के जीवन पर लागू होता है। वे प्रतीक्षा कर रहे हैं 1993 से जब संसद ने सबसे पहले क़ानूनी रूप से इस प्रथा को निषिद्ध घोषित किया था।

भाषा सिंह की मूल पुस्तक *अदृश्य भारत* शीर्षक से 2012 में हिन्दी में प्रकाशित हुई थी। रेणु तलवार के अंग्रेज़ी अनुवाद *अनसीन द ट्रुथ अबाउट इंडियाज़ मैनुअल स्केवैन्जर्स* के साथ पुस्तक को आज के हिसाब से आधुनिक और विस्तृत किया गया है।

इसमें कुछ नए अध्याय जोड़े गए हैं जैसे कि भारतीय रेल सेवा के बारे में। भाषा सिंह का कहना है कि उन्होंने "नए उदाहरण एवं आंकड़े भी जोड़े हैं।" मिसाल के लिए दिल्ली के अध्याय में मीना की कहानी की वर्तमान स्थिति दी गई है। शुक्र है कि अब वह ई-रिक्शा चलाती है जिसे सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन का सहयोग प्राप्त हैं। उसे दिल्ली या केन्द्रीय सरकार से कोई मदद नहीं मिली है।

लेखिका का यह भी कहना है कि उन्होंने 6 दिसम्बर 2013 से प्रभाव नए क़ानून "हाथ से मैला उठाने के रोज़गार का निषेध तथा उनका पुनर्वास क़ानून 2013" की भी इसमें चर्चा की है। इस भाग में नए क़ानून तथा उसकी क़मियों और उसके पीछे छिपे आशयों के बारे में भी बताया है कि कैसे यह नया क़ानून कार्यान्वयन में आया है तथा इसके पीछे कौन से घटक हैं। *'अनसीन'* पुस्तक को पढ़ना काफ़ी तकलीफ़देह था। अनेक बार स्वयं लेखिका अपने उन अनुभवों की भयानकता की चर्चा करती है जब वे 11 राज्यों में घूम-घूम कर हाथ से मैला उठाने वालों से मिल रही थीं। उनकी भाषाएं अलग थीं, पोशाक, रीति-रिवाज और मुक्ति की आशा के प्रति उनका दृष्टिकोण भी अलग-अलग था परन्तु वे आपस में उनके कार्य की अमानवीय प्रकृति तथा जाति प्रथा द्वारा पूरे एक समुदाय पर थोपे गए इस अभिशाप के कारण जुड़े हुए थे। लेखिका को निरन्तर यह अहसास होता रहा कि वे लोग हर रोज़ यही काम करने के लिए बाध्य हैं। यहां आयु का भी कोई बंधन नहीं है। दरअसल इस काम में लगे लोगों का कहना है कि कम उम्र से काम शुरू कर देना अच्छा है ताकि इसकी आदत पड़ जाए।

यह एक पर्याप्त शर्मनाक सच्चाई है कि "हाथ से मैला उठाने का रोज़गार तथा निर्जल संडास निर्माण (निषेध) क़ानून" 1993 में संसद में पास किया गया था। भाषा ने अपना शोध 2003 में शुरू किया था यानी क़ानून बनने के पूरे दस

साल बाद और पाया कि हाथ से मैला उठाने वाले अधिकतर लोगों ने इस क़ानून के बारे में सुना भी नहीं था और न पुनर्वास उन तक पहुंचा था।

अपने शोध के दौरान लेखिका का सामना समाज और सरकार की पूर्ण उदासीनता से हुआ। सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन को क़ानून लागू करवाने के लिए जनहित याचिका दायर करनी पड़ी। वे लिखती हैं कि कई नई चीज़ें हुई हैं पर सबसे अदभुत चीज़ है नया क़ानून। 2010 और 2011 में भारत सरकार ने संसद में एक वक्तव्य दिया कि भारत में हाथ से मैला उठाने की प्रथा समाप्त हो चुकी है। उन्होंने यह भी कहा कि हम इस योजना को बंद कर रहे हैं क्योंकि अब कोई हाथ से मैला नहीं उठाता। परन्तु 2014 में सरकार ने सिर्फ़ यह माना कि अब भी हाथ से मैला उठाया और सिर पर ढोया जाता है बल्कि एक नया क़ानून पास करके इसकी परिभाषा का विस्तार भी किया। 1993 के क़ानून में केवल निर्जल संडास की तरफ ध्यान दिया गया था लेकिन अब इसके अन्तर्गत सैप्टिक टैंक, खुली नालियों-गड्ढों की सफ़ाई तथा कुछ सीमा तक सीवर लाइनों तथा रेल की पटरियों की सफ़ाई को भी शामिल किया गया।

वे ज़ोर देकर कहती हैं कि भारत के इतिहास में पहली बार क़ानून में ऐसे मुद्दों पर बात हुई है। यह सब संभव हो पाया केवल समुदाय के अपने आंदोलन की वजह से। चूंकि उनकी कोई राजनीतिक उपस्थिति और आवाज़ नहीं है इसलिए किसी दल ने इस मुद्दे को नहीं उठाया। यह प्रभाव है जन मानस में बैठी जाति व्यवस्था का जो किसी न किसी रूप में आज भी सक्रिय है। सामाजिक तथा नागरिक क्षेत्र में भी बहुत कम संस्थाएं ऐसी हैं जो इस मुद्दे पर सक्रिय हैं।

जो भी परिवर्तन आया है उसके लिए स्त्रियां ज़िम्मेदार हैं जिन्होंने साफ़ कह दिया है कि वे इस अमानवीय कार्य को कतई नहीं करेंगी और न अपने बच्चों को इससे जुड़ने देंगी। वे इज़्ज़त का रोज़गार और ज़िन्दगी चाहती हैं।

वे एक अन्य बड़ी विडम्बना की ओर संकेत करती हैं भारत सरकार ने हाथ से मैला उठाने वालों के पुनर्वास के लिए तथा इस व्यवस्था की समाप्ति के लिए पिछले दो बजटों में 100 करोड़ रुपए आबंटित किए। परन्तु आश्चर्यजनक रूप से पता लगा कि पूरे साल में इस राशि का इस्तेमाल किया ही नहीं गया था क्योंकि इस सहायता को लेने के लिए कोई हाथ से मैला उठाने वाला आगे आया ही नहीं।

सरकार ने कहा कि वे हाथ से मैला उठाने वालों का राष्ट्रीय सर्वेक्षण करवाना चाहते हैं लेकिन इस काम के लिए तत्पर कोई उचित एजेन्सी नहीं मिलती। इसके बावजूद लेखिका का कहना है कि सफ़ाई कर्मचारी समूह ने हाथ से मैला उठाने वाले 1500 लोगों की फ़ोटो सहित सूची पेश की है जिसमें निर्जल शौचालय में मानव विष्ठा साफ़ करती हुई, झाड़ू उठाए हुए स्त्रियां दिखाई देती हैं। ये सूची भी सम्पूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें वे ही लोग शामिल है जो फ़ोटो खिंचवाने को तैयार थे। सवाल यह उठता है कि संबंधित एजेन्सियां शुरुआत के लिए कम से कम इस सूची का प्रयोग तो कर ही सकती हैं। परन्तु सरकारी बाबुओं और राजनीतिक व्यवस्था में इस मुद्दे के प्रति उदासीनता इतनी गहरी है कि इस सूची में शामिल लोगों तक को एक पैसा भी नहीं मिला।

दूसरी ओर आशा की एक किरण है कि इन्हीं में से कुछ स्त्रियां अपने समुदाय में बदलाव की शुरुआत करने वाली नेता के रूप में उभरी हैं। दिल्ली की मीना ऐसी ही एक मिसाल है। हालांकि जनजाति निगम ने ऋण के लिए उसकी अर्ज़ी खारिज़ कर दी जिससे वह खुद अपना ई-रिक्शा खरीद पाती परन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी। वह अपनी रोज़ की आमदनी में से छोटी-छोटी बचत कर रही है ताकि एक दिन अपना रिक्शा ख़रीद पाए।

यह वही देश है जिसकी राजधानी में विश्व स्तरीय मेट्रो रेल चलती हैं। बग़ैर व्यक्ति के टिकट जांच व्यवस्था काम करती है। लेकिन फिर भी जब सीवर लाइन के गड्ढे गंदगी से भर जाते हैं तो खुद इंसानों को इस गंदगी में धंसकर उसे साफ़ करना पड़ता है।

क्या इस तरह से बनती हैं महाशक्तियां?

(लेखिका के साक्षात्कार पर आधारित लेख)